त्रैमासिक पत्रिका अर्द्धसंयुक्तांक:25-26 वर्ष 2020 : आईएसएसएन: 2348-8662

कबीर अर्द्धसंयुक्तांक विशेषांक 2020

जनवरी-जून

Peer-Reviewed International Hindi Journal

वाद संवाद

साहित्य, समाज और संस्कृति की पत्रिका

कबीर केन्द्रित अर्द्धसंयुक्तांक विशेषांक

प्रधान संपादक
डॉ. राम रतन प्रसाद

अनुक्रम

संपादकीय (iii)

1. कबीर की योग साधना 7
   – डॉ. पवन सचदेवा
2. कबीर वाणी में देशहित 12
   – डॉ. राम रतन प्रसाद
3. कबीर के समय का समाज 19
   – डॉ. अंजली कायस्था
4. कबीर के काव्य में भक्ति भावना और सत्यता का तप 27
   – डॉ. मीना
5. विरोधी बनाम विद्रोही कबीर 30
   – डॉ. इन्दुदत्ता
6. मध्यकालीन लोकजागरण में कबीर और नानक 34
   – डॉ. प्रिया शर्मा
7. आदिकाल और मध्यकाल के पाठ्यक्रम का स्वरूप और चुनौतियाँ 39
   – डॉ. बृजेश कुमार
8. 'माया महाठगिनी हम जानी' कबीर की वाणी 42
   – डॉ. गीता देवी
9. कबीर और गुरु जाम्भोजी का समाज दर्शन 48
   – चंचल भाटी
10. गुरु जाम्भोजी की सामाजिक चेतना 59
    – डॉ. लहरी राम मीणा
11. कबीर का समाज दर्शन और उसकी प्रासंगिकता 64
    – डॉ. सीमा शर्मा
12. कबीर : एक निर्मोही संत 70
    – डॉ. अनिल कुमार सिंह
13. कबीर के काव्य में विद्रोह के स्वर 77
    – डॉ. सीमा देवी
14. कबीर की भक्ति भावना 81
    – सतपाल
15. महात्मा कबीर की सामाजिक संवेदना 85
    – पुष्पेन्द्र सिंह चौहान

वाद संवाद

आई. एस. एस. एन.
2348 – 8662

शोध विषयक अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक
PEER-REVIEWED JOURNAL

अंक-25-26
जनवरी-जून, 2020
कबीर केन्द्रित अर्द्धसंयुक्तांक विशेषांक
IMPACT FACTOR 7.5

स्वाक्षर
नई दिल्ली (भारत)

मध्यकालीन लोकजागरण में कबीर और नानक

– डॉ. प्रिया शर्मा

विश्व इतिहास में मध्यकाल का विस्तार सातवीं शती ईसवी से सत्रहवीं शती तक लगभग एक हज़ार वर्षों का है। भारत के इतिहास के अनुसार यह काल उन्नीसवीं शती तक खिंच जाता है और इस प्रकार 1200 वर्षों के सुदीर्घ आयाम को समेटता है। यह काल पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल के रूप में विभाजित किया जा सकता है। पूर्व मध्यकाल बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है, जिसके उत्तर मध्यकाल उन्नीसवीं शती तक चलता है। यह काल विभाजन इतिहासाधारित है। हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल की अवधारणा इससे भिन्न है। पूर्व मध्यकाल क्लासिकी मूल्यों के ह्रास के साथ संबद्ध है जबकि उत्तर मध्यकाल में लोकधर्मों, रोमानी आदर्शों तथा जीवन संबंधी वैयक्तिक मूल्यों का अभ्युदय होता है।

भारत में क्लासिकी राजनैतिक शक्ति का ह्रास हर्षवर्धन की मृत्यु के साथ आरंभ होकर तेरहवीं शताब्दी में केन्द्रीय इस्लामी सत्ता की स्थापना तथा हिंदू-शासन के पतन के साथ पूर्णता प्राप्त करता है। यह एक साम्राज्य द्वारा दूसरे साम्राज्य की पराजय मात्र न होकर राजनीति के लौकिक आधार से पूरी तरह विच्छिन्न हो जाने की प्रक्रिया का अंतिम छोर था। वस्तुतः यह प्रक्रिया साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही प्रारंभ हो चुकी थी। यह मानव के सामाजिक इतिहास का सुविज्ञात तथ्य है कि विभिन्न समाजों के आरंभिक कबीलाई स्वशासन के आधार रूप में जनतांत्रिक तथा लोकप्रिय आकांक्षाएँ एवं गणतांत्रिक स्वीकृति के तत्त्व बीज रूप में विद्यमान रहे हैं। क्लासिकी व्यवस्था तक पहुँचने वाले सभी समाजों ने अपनी आरंभिक स्थितियों से किसी न किसी प्रकार के लोकप्रिय स्वशासन (चाहे वह कुछ विशिष्ट सुविधा-संपन्न या निहित-स्वार्थ वाले वर्गों तक ही सीमित रहा हो) को अवश्य लिया और अनुभव किया।[1] क्लासिकी मजहबों (हिन्दू, इस्लाम और ईसाई) की छिन्न-भिन्नता मध्यकाल की विशेषता है। मध्यकाल को पतनकाल, अंधकारकाल, अवनति काल, हीनता का काल आदि भी कहा जाता है। परंतु इस नामकरण की पीछे भी सामंती दृष्टि और अभिजात्य रंगीन चश्मा ही मुख्य कारण रहा है। निरपेक्ष दृष्टि से इसे क्लासिकी व्यवस्था के विरुद्ध लोक के जागरण, विद्रोह, क्रांति और स्वतंत्रता के संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है।[2]

भारत में इस्लामी शासन के स्थिर हो जाने के बाद ही लोकजागरण की प्रक्रिया का आरंभ होता है। हिन्दू-मुसलमान, दोनों मज़हबों की रूढ़ मान्यताओं को कड़ा आघात प्राप्त होता है। पौराणिक हिन्दू धर्म उच्चवर्गीय कट्टरता, रूढ़िवादिता और शोषण से निराश लोक इससे पहले भी

• सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश